

Chapter सत्तर

भगवान् कृष्ण की दैनिक चर्या

इस अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण की दैनिक चर्या तथा उनके समक्ष, पहला, द्वारका से आये दूत का तथा दूसरा, नारदमुनि द्वारा रखे गये दो प्रस्तावों का वर्णन हुआ है।

भगवान् कृष्ण ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर स्वच्छ जल में स्नान करते थे। प्रातःकालीन अनुष्ठान तथा अन्य धार्मिक कृत्य करने के बाद वे पवित्र अग्नि में होम करते, गायत्री मंत्र का जाप करते, देवताओं, ऋषियों तथा पूर्वजों को नमस्कार करके पूजा करते और विद्वान् ब्राह्मणों को सम्मान देते थे। तत्पश्चात् वे शुभ वस्तुओं का स्पर्श करते, अपने को दिव्य आभूषणों से सजाते और अपनी प्रजा को उनकी मनचाही वस्तुएँ देकर तुष्ट करते थे।

तब उनका सारथी दारुक रथ लाता और वे उसमें चढ़ कर राजसभा-भवन जाते। जब वे यादवों से घिर कर सभा में अपना आसन ग्रहण करते, तो वे नक्षत्रों से घिरे चन्द्रमा की तरह प्रतीत होते। चारण एवं भाट ढोल, मंजीरे, वीणा तथा अन्य वाद्ययंत्रों के साथ उनका यशोगान करते।

एक बार द्वारपाल एक दूत को सभाभवन में ले आए। उस दूत ने भगवान् को दण्डवत्-प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनसे निवेदन किया, “प्रभु! जरासन्ध ने बीस हजार राजाओं को पकड़ कर उन्हें बन्दी बना लिया है। कृपया कुछ करें, क्योंकि ये सारे राजा आपके शरणागत भक्त हैं।”

तभी नारदमुनि प्रकट हुए। भगवान् श्रीकृष्ण तथा सभा के सारे सदस्य खड़े हो गये और अपने शीश नवा कर नारदजी को नमस्कार किया। जब ऋषि आसन ग्रहण कर चुके, तो भगवान् ने विनयपूर्वक उनसे प्रश्न किया, “चूँकि आप ब्रह्माण्ड-भर में भ्रमण करते रहते हैं, अतएव हमें बतलायें कि पाँचों पांडव क्या करने की योजना बना रहे हैं?” तब नारद ने भगवान् की प्रशंसा की और उत्तर दिया, “राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ सम्पन्न करना चाह रहे हैं। इसके लिए वे आपकी स्वीकृति तथा आपकी उपस्थिति के लिए अनुरोध करते हैं। वहाँ पर अनेक देवता तथा विख्यात राजा केवल आपके दर्शनार्थ आयेंगे।”

यह जान कर कि यादव चाहते हैं कि वे जरासन्ध को परास्त करें, भगवान् कृष्ण ने अपने चतुर

मंत्री उद्धव से कहा कि वे यह निश्चित करें कि सामने आए दोनों मामलों में से पहले जरासन्ध को परास्त करना जरूरी है या कि राजसूय यज्ञ में उनकी उपस्थिति।

श्रीशुक उवाच

अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् ।
गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; उषसि—भोर में; उपवृत्तायाम्—निकट आ रहे; कुक्कुटान्—मुर्गी को; कूजतः—बाँग देते; अशपन्—शाप दिया; गृहीत—पकड़ा हुआ; कण्ठ्यः—गले से; पतिभिः—अपने पतियों (अनेक रूपों में कृष्ण) द्वारा; माधव्यः—भगवान् कृष्ण की पत्नियाँ; विरह—वियोग के कारण; आतुराः—क्षुब्ध।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जैसे जैसे प्रभात निकट आने लगा वैसे वैसे भगवान् माधव की सारी पत्नियाँ जो पति द्वारा गले में आलिंगित थीं, बाँग देते मुर्गी को कोसने लगीं। ये स्त्रियाँ विक्षुब्ध थीं क्योंकि अब वे उनसे विलग हो जायेंगी।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण की दैनिक चर्या का यह वर्णन मुर्गी की बाँग से प्रारम्भ होता है। भगवान् कृष्ण की पत्नियाँ जानती थीं कि भगवान् नियमपूर्वक उठ कर अपने प्रातःकालीन अनुष्ठान में लग जायेंगे। इस तरह शीघ्र ही उनसे विलग हुई जाने के कारण वे क्षुब्ध थीं और मुर्गी को कोस रही थीं।

वयांस्यरोरुवन्कृष्णं बोधयन्तीव वन्दिनः ।
गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

वयांसि—पक्षियों को; अरोरुवन्—जोर से शब्द करती हुई; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; बोधयन्ति—जगाती हुई; इव—मानो; वन्दिनः—भाट; गायत्सु—गाने लगे; अलिषु—भौर; अनिद्राणि—निद्रा से जगाये गये; मन्दार—पारिजात वृक्ष के; वन—उद्यान से; वायुभिः—मन्द वायु द्वारा।

पारिजात उद्यान से आने वाली सुगंधित वायु से उत्पन्न भौरों की गुनगुनाहट ने पक्षियों को नींद से जगा दिया। और जब ये पक्षी जोर जोर से चहचहाने लगे, तो उन्होंने भगवान् कृष्ण को जगा दिया मानो दरबारी कवि उनके यश का गायन कर रहे हों।

मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ।
परिरम्भणविश्लेषात्प्रियबाह्वन्तरं गता ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

मुहूर्तम्—दिन का समय, घड़ी को; तम्—उस; तु—लेकिन; वैदर्भी—महारानी रुक्मिणी ने; न अमृष्यत्—पसन्द नहीं किया; अति—अत्यन्त; शोभनम्—शुभ; परिरम्भण—उनके आलिंगन की; विश्लेषात्—हानि से; प्रिय—अपने प्रियतम की; बाहु—भुजाओं के; अन्तरम्—बीच में; गता—स्थित।

अपने प्रियतम की बाहों में लेटी हुई महारानी वैदर्भी को यह परम शुभ वेला नहीं भाती थी क्योंकि इसका अर्थ यह था कि वे उनके आलिंगन से विहीन हो जायेंगी।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि महारानी वैदर्भी अर्थात् रुक्मिणीदेवी की प्रतिक्रिया समस्त रानियों के मनोभावों की द्योतक है।

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ।

दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥

एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं

स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ।

ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः

स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मे मुहूर्त—सूर्योदय से पूर्व, भोर में जो आध्यात्मिक कार्यों के लिए दिन का सर्वाधिक उत्तम समय है; उत्थाय—उठकर; वारि—जल; उपस्पृश्य—छूकर; माधवः—भगवान् कृष्ण ने; दध्यौ—ध्यान किया; प्रसन्न—विमल; करणः—मन; आत्मानम्—अपने ऊपर; तमसः—अज्ञान; परम्—परे; एकम्—एकमात्र; स्वयम्-ज्योतिः—आत्म-प्रकाशित; अनन्यम्—अनन्य; अव्ययम्—अव्यय; स्व-संस्थया—अपने स्वभाव से; नित्य—नित्य; निरस्त—भगाते हुए; कल्मषम्—दूषण को; ब्रह्म-आख्यम्—ब्रह्म या परम सत्य नाम से विख्यात; अस्य—इस (ब्रह्माण्ड) का; उद्भव—सृष्टि; नाश—तथा संहार; हेतुभिः—कारणों से; स्व—निजी; शक्तिभिः—शक्तियों से; लक्षित—प्रकट; भाव—अस्तित्व; निर्वृतिम्—हर्ष।

भगवान् माधव ब्राह्म मुहूर्त में उठा करते और जल का स्पर्श किया करते थे। तब स्वच्छ मन से वे एकाकी, आत्म-प्रकाशित, अनन्य तथा अच्युत परम सत्य ब्रह्म-रूप स्वयं का ध्यान करते, जो स्वभाव से ही सारे कल्मष को दूर करने वाला है और जो अपनी उन निजी शक्तियों के द्वारा, जो इस ब्रह्माण्ड का सृजन और संहार करती हैं, अपना ही शुद्ध तथा आनन्दमय स्वरूप प्रकट करता है।

तात्पर्य : विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि इस श्लोक में भाव शब्द समस्त उत्पन्न प्राणियों का सूचक है। इस तरह समास-युक्त शब्द लक्षित-भाव-निर्वृतिम् का अर्थ होगा कि भगवान् कृष्ण उत्पन्न जीवों को अपनी विविध शक्तियों से आनन्द प्रदान करते हैं। निस्सन्देह आत्मा कभी उत्पन्न नहीं किया जाता किन्तु हमारा भौतिक बद्धशरीर भगवान् की शक्तियों की अन्योन्य क्रिया से उत्पन्न होता है।

जिसे भगवान् की अन्तरंगा शक्ति की कृपा प्राप्त होती है, वही ब्रह्म या परम सत्य के स्वभाव को समझ सकता है। यह समझ कृष्णभावनामृत कहलाती है। *भगवद्गीता* में भगवान् कृष्ण बतलाते हैं कि उनकी शक्तियाँ अपरा और परा अथवा भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों में विभाजित हैं। *ब्रह्म-संहिता* में आगे यह बतलाया गया है कि भौतिक शक्ति छाया की तरह कार्य करती है, जो आध्यात्मिक सच्चाई की, जो कि साक्षात् भगवान् तथा उनकी आध्यात्मिक शक्ति है, गतियों का अनुगमन करती है। जब किसी पर भगवान् कृष्ण की कृपा होती है, तो वे शरणागत आत्मा के समक्ष प्रकट होते हैं और वही सृष्टि, जो पहले आत्मा को आच्छादित किये रहती थी, अब आध्यात्मिक प्रकाश के लिए प्रेरणाप्रद बन जाती है।

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि

क्रियाकलापं परिधाय वाससी ।

चकार सन्ध्योपगमादि सत्तमो

हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; आप्लुतः—स्नान करके; अम्भसि—जल में; अमले—स्वच्छ; यथा-विधि—वैदिक नियमों के अनुसार; क्रिया—अनुष्ठान के; कलापम्—समस्त अनुक्रम; परिधाय—पहन कर; वाससी—अधो तथा ऊपरी वस्त्र; चकार—किया; सन्ध्या-उपगम—प्रातःकालीन पूजा; आदि—इत्यादि; सत्-तमः—साधु-पुरुष; हुत—आहुति देकर; अनलः—पवित्र अग्नि को; ब्रह्म—वेदों का मंत्र (गायत्री); जजाप—मौन रहकर उच्चारण किया; वाक्—वाणी; यतः—नियंत्रित करते हुए।

तब पुरुषों में अत्यन्त साधु सदृश भगवान् कृष्ण पवित्र जल में स्नान करते, अपने अधो वस्त्र तथा ऊपरी वस्त्र पहनते और प्रातःकालीन पूजा इत्यादि सारे नियमित क्रिया-कलाप सम्पन्न करते। फिर पवित्र अग्नि में आहुति देकर वे मन ही मन गायत्री मंत्र का जाप करते।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि भगवान् कृष्ण कण्व मुनि की शिष्य-परम्परा में थे, अतएव उन्होंने सूर्योदय के पूर्व अग्नि में आहुति डाली। तब उन्होंने गायत्री मंत्र का जाप किया।

उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वात्मनः कलाः ।

देवानृषीन्पितृन्बृहान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥

धेनूनां रुक्मशृङ्गीनां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ।

पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ८ ॥

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ।

अलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्धं बद्धं दिने दिने ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

उपस्थाय—पूजा करके; अर्कम्—सूर्य को; उद्यन्तम्—उदय होते; तर्पयित्वा—तर्पण करके; आत्मनः—अपने; कलाः—अंशों को; देवान्—देवताओं को; ऋषीन्—ऋषियों को; पितृन्—तथा पितरों को; वृद्धान्—अपने गुरुजनों को; विप्रान्—तथा ब्राह्मणों को; अभ्यर्च्य—पूज कर; च—तथा; आत्म-वान्—अपनी ही; धेनूनाम्—गौवों के; रुक्म—सोने (से मढ़ी); शृङ्गीनाम्—सींगों वाली; साध्वीनाम्—अच्छे स्वभाव वाली; मौक्तिक—मोतियों की; स्रजाम्—मालाओं से; पयस्विनीनाम्—दूध देने वाली; गृष्टीनाम्—एक बार ब्याई; स-वत्सानाम्—अपने बछड़ों समेत; सु-वाससाम्—अच्छी तरह से वस्त्र पहने; ददौ—दिया; रूप्य—चाँदी (से मढ़ी); खुर—खुरों वाली; अग्राणाम्—अगले; क्षौम—मलमल; अजिन—मृगचर्म; तिलैः—तथा तिल; सह—के साथ साथ; अलङ्कृतेभ्यः—आभूषण दिये गये; विप्रेभ्यः—ब्राह्मणों को; बद्धम् बद्धम्—(एक सौ सात) १३,०८४ के समूह (पूर्ण संख्या १४,००,०००); दिने दिने—प्रतिदिन।

प्रतिदिन भगवान् उदय होते सूर्य की पूजा करते और अपने अंशरूप देवताओं, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करते। तत्पश्चात् आत्म-समृद्ध भगवान् अपने गुरुजनों तथा ब्राह्मणों की ध्यानपूर्वक पूजा करते। वे सुवस्त्राभूषित ब्राह्मणों को, पालतू तथा शान्त गौवों का झुंड दान में देते, जिनके सींग सोने से मढ़े होते और गले में मोतियों की मालाएँ रहती थीं। ये गौवें सुन्दर वस्त्रों से भी विभूषित रहतीं और उनके खुरों के अगले हिस्से चाँदी से मढ़े होते। ये प्रचुर दूध देने वाली तथा एक बार (ब्याँती) वाली होतीं और इनके साथ इनके बछड़े होते। भगवान् प्रतिदिन १३,०८४ गौवों के अनेक झुंड विद्वान ब्राह्मणों को देते और साथ में मलमल, मृगचर्म तथा तिल भी दान देते।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी ने यह दिखाने के लिए कई शास्त्रों से उद्धरण दिये हैं कि वैदिक अनुष्ठान के सन्दर्भ में बद्ध १३,०८४ गौवों का सूचक है। बद्ध बद्ध दिने दिने शब्दों से सूचित होता है कि भगवान् कृष्ण नित्य ही विद्वान ब्राह्मणों को गौवों के ऐसे अनेक झुंड दान देते थे। श्रीधर स्वामी यह भी प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि प्राचीन युग में महान् सन्त राजा १०७ बद्ध (१०७ - १३,०८४) गौवें दान में देते थे। इस तरह इस यज्ञ में, जिसका नाम मञ्जार है, कुल १४ लाख गौवें दी गईं।

अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यः शब्द सूचक हैं कि भगवान् कृष्ण के राज्य में ब्राह्मणों को सुन्दर सुन्दर वस्त्र और आभूषण दिये जाते थे। इस तरह वे अच्छी वेशभूषा में रहते थे।

श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद ने भगवान् कृष्ण की इन लीलाओं के विषय में गहरी अन्तर्दृष्टि प्रस्तुत की है। पाठकों को इस पुस्तक को पढ़ना चाहिए क्योंकि इस पुस्तक में श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में वर्णित लीलाओं के विषय में पर्याप्त जानकारी तथा व्याख्या मिलती है। यहाँ पर किया गया हमारा विनीत प्रयास हमारे गुरुवर की शुद्धता तथा दक्षता के समक्ष नगण्य है। फिर भी उनके चरणकमलों की

सेवा में हम दशम स्कंध के मूलपाठ के शब्दार्थ, उनकी स्पष्ट एवं आवश्यक टीका प्रस्तुत कर रहे हैं, जो प्रायः हमारी परम्परा के महान् गुरुओं के कथनों पर आधारित है।

गोविप्रदेवतावृद्धगुरून्भूतानि सर्वशः ।

नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

गो—गौवों; विप्र—ब्राह्मणों; देवता—देवताओं; वृद्ध—वरेषुजन; गुरून्—तथा गुरुओं को; भूतानि—जीवों को; सर्वशः—समस्त; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; आत्म—अपने; सम्भूतीः—अंशों को; मङ्गलानि—शुभ वस्तुएँ (यथा भूरी गाय); समस्पृशत्—स्पर्श किया।

भगवान् कृष्ण गौवों, ब्राह्मणों तथा देवताओं, अपने वरेषुजनों तथा गुरुओं और समस्त जीवों को—जो उन परम पुरुष के ही अंशरूप हैं—नमस्कार करते। तब वे शुभ वस्तुओं का स्पर्श करते।

आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ।

वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्त्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

आत्मानम्—स्वयं को; भूषयाम् आस—सजाते; नर-लोक—मानव समाज के; विभूषणम्—आभूषण; वासोभिः—वस्त्रों से; भूषणैः—तथा रत्नों से; स्वीयैः—अपने ही; दिव्य—दैवी; स्त्रक्—फूल की मालाओं से; अनुलेपनैः—तथा लेपों से।

वे मानव समाज के आभूषण स्वरूप अपने शरीर को अपने विशेष वस्त्रों तथा रत्नों से और दैवी फूल-मालाओं एवं लेपों से सजाते।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि भगवान् के “निजी वस्त्रों तथा आभूषणों” में भगवान् का सुप्रसिद्ध पीताम्बर तथा कौस्तुभ मणि इत्यादि सम्मिलित हैं।

अवेक्ष्याज्यं तथादर्शं गोवृषद्विजदेवताः ।

कामांश्च सर्ववर्णानां पौरान्तःपुरचारिणाम् ।

प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अवेक्ष्य—देखकर; आज्यम्—घी की ओर; तथा—और भी; आदर्शम्—शीशे की ओर; गो—गौवें; वृष—साँड़ों; द्विज—ब्राह्मणों; देवताः—देवतागण; कामान्—इच्छित वस्तुओं; च—तथा; सर्व—सभी; वर्णानाम्—जातियों के लोगों को; पौर—नगर में; अन्तः-पुर—महल के भीतर; चारिणाम्—रहने वाले; प्रदाप्य—देने का प्रबन्ध करके; प्रकृतीः—मंत्रीगण; कामैः—अपनी इच्छाओं के पूर्ण होने से; प्रतोष्य—पूरी तरह तुष्ट करके; प्रत्यनन्दत—सत्कार किया।

तब वे घी, दर्पण, गौवों तथा साँड़ों, ब्राह्मणों और देवताओं की ओर देखते और आश्चस्त

होते कि महल के भीतर तथा पूरे नगर में रहने वाले सभी जातियों के लोग इन उपहारों से सन्तुष्ट तो हैं। तत्पश्चात् अपने मंत्रियों की इच्छाओं को पूरा करके उनका अभिवादन और सत्कार करते।

संविभज्याग्रतो विप्रान्त्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ।

सुहृदः प्रकृतीदारानुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

संविभज्य—बाँट कर; अग्रतः—पहले; विप्रान्—ब्राह्मणों को; त्रक्—मालाएँ; ताम्बूल—पान; अनुलेपनैः—तथा चन्दन-लेप से; सुहृदः—अपने मित्रों; प्रकृतीः—अपने मंत्रियों; दारान्—अपनी पत्नियों; उपायुङ्क्त—काम में लाते; ततः—तब; स्वयम्—स्वयम्।

सर्वप्रथम ब्राह्मणों को पुष्प-मालाएँ, पान तथा चन्दन-लेप बाँटकर इन्हीं उपहारों को अपने मित्रों, मंत्रियों तथा पत्नियों को देते और अन्त में स्वयं इनका उपभोग करते।

तावत्सूत उपानीय स्यन्दनं परमाद्भुतम् ।

सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक; सूतः—सारथी; उपानीय—लाकर; स्यन्दनम्—रथ को; परम—अत्यन्त; अद्भुतम्—अद्भुत; सुग्रीव-आद्यैः—सुग्रीव नाम के तथा अन्य; हयैः—घोड़ों से; युक्तम्—जुता हुआ; प्रणम्य—प्रणाम करके; अवस्थितः—खड़ा हुआ; अग्रतः—उनके सामने।

तब तक भगवान् का सारथी उनके अत्यन्त अद्भुत रथ को ले आता जिसमें सुग्रीव तथा उनके अन्य घोड़े जुते होते। तत्पश्चात् उनका सारथी उन्हें नमस्कार करता और उनके समक्ष आ खड़ा होता।

गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत् ।

सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

गृहीत्वा—पकड़ कर; पाणिना—अपने हाथ से; पाणी—हाथ; सारथेः—अपने सारथी के; तम्—उसको; अथ—तब; आरुहत्—चढ़ गये; सात्यकि-उद्धव—सात्यकि तथा उद्धव से; संयुक्तः—संग में; पूर्व—पूर्व की ओर का; अद्रिम्—पर्वत; इव—मानो; भास्करः—सूर्य।

अपने सारथी के हाथों को पकड़ कर भगवान् कृष्ण सात्यकि तथा उद्धव के साथ साथ रथ पर इस तरह चढ़ते मानो सूर्य पूर्व के पर्वत (उदयाचल) पर उदय हो रहा हो।

तात्पर्य : आचार्यगण इंगित करते हैं कि सारथी हाथ जोड़े खड़ा रहता और भगवान् अपने दाहिने हाथ से उसके जुड़े हाथों को पकड़ कर रथ पर चढ़ते।

ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ।

कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ईक्षितः—देखे गये; अन्तः-पुर—महल की; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; स-व्रीड—लजीली; प्रेम—तथा प्रेमपूर्ण; वीक्षितैः—चितवनों से; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; विसृष्टः—छूट कर; निरगात्—छुटकारा पाकर; जात—प्रकट; हासः—हँसी; हरन्—चुराते; मनः—उनके मनों को।

महल की स्त्रियाँ भगवान् कृष्ण को लजीली प्रेममयी चितवनों से देखतीं और इस तरह वे मुश्किल से उनसे छूट पाते। तत्पश्चात् वे अपने हँसीयुक्त मुख से उनके मन को चुराते हुए चल पड़ते।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती उक्त दृश्य का वर्णन इस प्रकार करते हैं: “अन्तःपुर की महिलाओं की लजीली प्रेम-भरी चितवनें, जो उनकी चंचलता का संकेत दे रही थीं, मानों कह रही हों, “हम आपसे विलग होने के इस कष्ट को कैसे सह सकती हैं?” भाव यह है कि चूँकि भगवान् उनके स्नेह के वशीभूत हो रहे थे अतएव वे यह इंगित करते हुए मुसकाने लगे, “प्रिय चंचल स्त्रियो! इस छोटे-से वियोग से तुम लोग इतनी अभिभूत हो गई हो। मैं आज ही बाद में तुम सबों के साथ रमण करने के लिए वापस आ रहा हूँ।” और तब वे उन सबों के मन को मोहने वाली हँसी के साथ अपने को उन सबों की प्रेमभरी चितवनों के बंधन से छुड़ाकर बड़ी मुश्किल से बाहर निकल पाये।”

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ।

प्राविशद्यन्निविष्टानां न सन्त्यङ्ग षडूर्मयः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सुधर्मा-आख्याम्—सुधर्मा नामक; सभाम्—राजसभो-भवन में; सर्वैः—सभी; वृष्णिभिः—वृष्णियों द्वारा; परिवारितः—सम्मिलित हुए; प्राविशत्—प्रविष्ट हुए; यत्—जो; निविस्तानाम्—प्रविष्ट हुआओं के लिए; न सन्ति—नहीं हैं; अङ्ग—हे राजा (परीक्षित); षट्—छः; ऊर्मयः—तरंगों।

हे राजन्, भगवान् समस्त वृष्णियों के साथ साथ उस सुधर्मा सभाभवन में प्रवेश करते, जो उसमें प्रवेश करने वालों को भौतिक जीवन की छह तरंगों से रक्षा करता है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: “यह स्मरण रखना होगा कि सुधर्मा सभाभवन स्वर्गलोक से लाकर द्वारकापुरी नगरी में फिर से स्थापित किया गया था। इस सभाभवन की विशेषता यह थी कि जो भी इसमें प्रवेश करता वह छह प्रकार के भौतिक कष्टों—भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा तथा मृत्यु—से

मुक्त हो जाता था। इस संसार में कोड़े लगते रहते हैं किन्तु जब तक कोई सुधर्मा सभाभवन में रहता तब तक वह इन छः भौतिक कोड़ों से प्रभावित नहीं होता था।”

इस सम्बन्ध में श्रीधर स्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती की व्याख्या है कि जब भगवान् कृष्ण अपने अनेक महलों में से होकर अलग अलग बाहर निकलते तो उनका प्रत्येक रूप उन विशेष महलों के प्रांगणों में उपस्थित रहने वालों को तथा पड़ोसी निवासियों को दृष्टिगोचर होता किन्तु अन्यो को नहीं। तत्पश्चात् सुधर्मा सभाभवन के द्वार पर भगवान् के सारे रूप एक में मिल जाते और इस तरह वे सभाभवन में प्रवेश करते।

तत्रोपविस्तः परमासने विभु-

बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ।

वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो

यथोदुराजो दिवि तारकागणैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; उपविष्टः—बैठे; परम-आसने—उच्च सिंहासन पर; विभुः—सर्वशक्तिमान प्रभु; बभौ—चमकते; स्व—अपने; भासा—तेज से; ककुभः—आकाश के कोने; अवभासयन्—प्रकाशित करते हुए; वृतः—घिरे हुए; त्रु—मनुष्य के रूप; सिंहैः—सिंहों द्वारा; यदुभिः—यदुओं द्वारा; यदु-उत्तमः—यदुओं में सर्वश्रेष्ठ; यथा—जिस तरह; उदु-राजः—चन्द्रमा; दिवि—आकाश में; तारका-गणैः—तारों से (घिरा हुआ)।

जब उस सभाभवन में सर्वशक्तिमान भगवान् अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान होते तो वे अपने अद्वितीय तेज से आकाश की दिशाओं को प्रकाशित करते हुए शोभायमान होते। पुरुषों में सिंह रूप यदुओं से घिर कर वे यदुश्रेष्ठ वैसे ही प्रतीत होते जैसे कि अनेक तारों के बीच चन्द्रमा।

तत्रोपमन्त्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् ।

उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्ताण्डवैः पृथक् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; उपमन्त्रिणः—विदूषक; राजन्—हे राजन्; नाना—विविध; हास्य—हास्य; रसैः—रसों के द्वारा; विभुम्—भगवान् को; उपतस्थुः—उन्होंने सेवा की; नट-आचार्याः—दक्ष मनोविनोद करने वाले; नर्तक्यः—नर्तकियाँ; ताण्डवैः—कलापूर्ण नृत्य से; पृथक्—अलग से।

हे राजन्, वहाँ पर विदूषक विविध हास्य रसों का प्रदर्शन करके भगवान् का मनोरंजन करते, दक्ष नर्तक उनके लिए अभिनय करते और नर्तकियाँ ओजपूर्ण नृत्य प्रस्तुत करतीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि नटाचार्य शब्द और बातों के साथ साथ दक्ष

जादूगरों का द्योतक है। ये तरह तरह के मनोविनोद प्रस्तुतकर्ता राजसभा में एक के बाद एक, भगवान् के लिए प्रदर्शन करते।

मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ।

ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवन्दिनः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मृदङ्ग—मृदंग; वीणा—वीणा; मुरज—तथा मुरज का, एक प्रकार का अन्य ढोल; वेणु—बाँसुरी; ताल—मंजीरें; दर—तथा शंख के; स्वनैः—ध्वनि सहित; ननृतुः—नृत्य किया; जगुः—गाया; तुष्टुवुः—प्रशंसा की; च—तथा; सूत—भाट; मागध—तथा चारण; वन्दिनः—तथा वंदीजन।

ये अभिनयकर्ता मृदंग, वीणा, मुरज, वंशी, मंजीरा तथा शंख की ध्वनि के साथ नाचते और गाते, जबकि पेशेवर कवि, मागध तथा वन्दीजन भगवान् के यश का गायन करते।

तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ।

पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन्कथाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; आहुः—बोले; ब्राह्मणाः—ब्राह्मणगण; केचित्—कुछ; आसीनाः—बैठे हुए; ब्रह्म—वेदों के; वादिनः—ज्ञाता; पूर्वेषाम्—भूतकाल के; पुण्य—पवित्र; यशसाम्—जिनका यश; राज्ञाम्—राजाओं का; च—तथा; आकथयन्—सुनाते; कथाः—कथाएँ।

कुछ ब्राह्मण उस सभाभवन में बैठ कर वैदिक मंत्रों का सस्वर पाठ करते और कुछ पूर्वकालीन पवित्र कीर्ति वाले राजाओं की कथाएँ कह कर सुनाते।

तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ।

विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; एकः—एक; पुरुषः—व्यक्ति; राजन्—हे राजा (परीक्षित); आगतः—आया; अपूर्व—जिसके पहले कभी नहीं; दर्शनः—जिसका प्राकटय; विज्ञापितः—आने की सूचना दी; भगवते—भगवान् से; प्रतीहारैः—द्वारपालों के द्वारा; प्रवेशितः—भीतर जाने दिया गया।

हे राजन्, एक बार एक व्यक्ति उस सभा में आया जो इसके पूर्व वहाँ कभी नहीं देखा गया था। द्वारपालों ने उसके आने की जानकारी भगवान् को दी और तब वे उसे भीतर लेकर आये।

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ।

राज्ञामावेदयहुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; कृष्णाय—भगवान् कृष्ण को; पर-ईशाय—परमेश्वर; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़ कर; राज्ञाम्—राजाओं के; आवेदयत्—निवेदन किया; दुःखम्—कष्ट; जरासन्ध—जरासन्ध द्वारा; निरोध-जम्—बन्दी बनाये जाने के कारण।

उस व्यक्ति ने भगवान् कृष्ण को नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर उनको बतलाया कि जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाये जाने के कारण किस तरह अनेक राजा कष्ट भोग रहे हैं।

ये च दिग्विजये तस्य सन्नतिं न ययुर्नृपाः ।

प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; च—तथा; दिक्-विजये—सभी दिशाओं में विजय के समय; तस्य—उसकी (जरासन्ध की); सन्नतिम्—पूर्ण अधीनता; न ययुः—स्वीकार नहीं किया; नृपाः—राजा; प्रसह्य—बलपूर्वक; रुद्धाः—बन्दी बनाये गये; तेन—उसके द्वारा; आसन्—थे; अयुते—दस हजार; द्वे—दो; गिरि-व्रजे—गिरिव्रज नामक किले में।

जिन बीस हजार राजाओं ने जरासन्ध की दिग्विजय के समय पूर्ण अधीनता स्वीकार नहीं की थी, वे उसके द्वारा बलपूर्वक गिरिव्रज नामक किले में बन्दी बना लिये गये थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि ये वे राजा थे जिन्होंने भेंट देने तथा अन्य प्रकार की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण विवरण मिलता है कि जरासन्ध ने एक लाख राजाओं की बलि देकर महाभैरव की पूजा करनी चाही थी।

राजान ऊचुः

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभञ्जन ।

वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

राजानः—राजाओं ने; ऊचुः—कहा; कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; अप्रमेय-आत्मन्—हे अमाप्य आत्मा; प्रपन्न—शरणागत लोगों के; भय—डर के; भञ्जन—हे नष्ट करने वाले; वयम्—हम; त्वाम्—तुम्हारी; शरणम्—शरण में; यामः—आये हैं; भव—संसार से; भीताः—डरे हुए; पृथक्—अलग; धियः—जिनकी मनोवृत्ति।

[दूत के द्वारा दिये गये वृत्तान्त के अनुसार] राजाओं ने कहा : हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे अप्रमेय आत्मा, हे शरणागतों के भय के विनाशक, हम पृथक् पृथक् मत रखने के बावजूद संसार से भयभीत होकर आपके पास शरण लेने आये हैं।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी व्याख्या करते हैं कि इस श्लोक में तथा अगले पाँच श्लोकों में राजाओं का

निवेदन प्रस्तुत हुआ है। इस श्लोक में वे भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं, अगले तीन श्लोकों में वे अपने भय का वर्णन करते हैं और अन्तिम दो श्लोकों में वे अपनी प्रार्थनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः

कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।

यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां

सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

लोकः—सारा संसार; विकर्म—पापकर्मों में; निरतः—सदैव लिप्त; कुशले—उनके लाभ के लिए; प्रमत्तः—मोहग्रस्त; कर्मणि—कार्यों में; अयम्—यह (जगत); त्वत्—तुम्हारे द्वारा; उदिते—कहे गये; भवत्—आपका; अर्चने—पूजा में; स्वे—अपनी (लाभप्रद कार्य); यः—जो; तावत्—तब तक; अस्य—इस (जगत का); बल-वान्—शक्तिशाली; इह—इस जीवन में; जीवित—दीर्घायु के लिए; आशाम्—आशा; सद्यः—सहसा; छिनत्ति—काट देता है; अनिमिषाय—पलक झपकने तक के समय को; नमः—नमस्कार; अस्तु—हो; तस्मै—उसको।

इस जगत में लोग सदैव पापकर्मों में लगे रहते हैं और इस तरह वे अपने असली कर्तव्य के विषय में, जो आपके आदेशानुसार आपकी पूजा करना है, विभ्रमित रहते हैं। इस कार्य से सचमुच ही उन्हें सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। हम सर्वशक्तिमान भगवान् को नमस्कार करते हैं, जो काल रूप में प्रकट होते हैं और इस जगत में दीर्घायु की प्रबल आशा को सहसा छिन्न कर देते हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता (९.२७) में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

“हे कौन्तेय! तुम जो भी करो, जो भी खाओ, जो भी मुझे अर्पित करो या दान दो और जो भी तपस्या करो, उसे मुझे भेंट के रूप में करो।”

यही परमेश्वर का अध्यादेश है किन्तु लोग सामान्यतः विभ्रमित रहते हैं और इस शुभ कार्य की उपेक्षा करके भयानक कष्ट देने वाले पापपूर्ण कर्मों को चुनते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन भगवद्भक्ति के इस अत्यावश्यक कार्य के विषय में संसार को प्रबुद्ध करने का कार्य कर रहा है।

लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः

सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ।

कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश

किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

लोके—इस जगत में; भवान्—आप; जगत्—ब्रह्माण्ड का; इनः—प्रधान; कलया—अपने अंश बलदेव के साथ अथवा अपनी कालशक्ति के साथ; अवतीर्णः—अवतरित होकर; सत्—सन्त पुरुषों की; रक्षणाय—रक्षा करने हेतु; खल—दुष्ट का; निग्रहणाय—दमन करने के लिए; च—तथा; अन्यः—दूसरा; कश्चित्—कोई; त्वदीयम्—तुम्हारे; अतियाति—उल्लंघन करता है; निदेशम्—नियम का; ईश—हे प्रभु; किम् वा—अथवा; जनः—कोई व्यक्ति; स्व—अपने से; कृतम्—बनाया गया; ऋच्छति—पा लेता है; तत्—उसे; न विद्मः—हम नहीं जानते।

आप विश्व के अधिष्ठाता प्रभु हैं और आप इस जगत में सन्तों की रक्षा करने तथा दुष्टों का दमन करने के लिए अपनी निजी शक्ति के साथ अवतरित हुए हैं। हे प्रभु, हम यह समझ नहीं पाते कि कोई आपके नियम का उल्लंघन करने पर भी अपने कर्म के फलों को कैसे भोग सकता है?

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि राजा लोग अपने ऊपर आई विपत्ति के कारण विभ्रमित थे। वे इस श्लोक में यह बतलाते हैं कि भगवान् इस जगत में पुण्यात्माओं की रक्षा करने और दुष्टों को दण्ड देने के लिए अवतरित हुए हैं, तो फिर भगवान् के आदेश का सरासर उल्लंघन करने वाला यह जरासन्ध किस तरह अपने दुष्ट कर्म करता जा रहा है, जबकि सारे राजा दयनीय स्थिति में धकेल दिये गये हैं? इसी तरह श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि राजा लोग यह न समझ पाये कि जरासन्ध, जो कि सन्त भक्तों को सताये जा रहा था और दुष्टों का पोषण कर रहा था, किस तरह उन्नति करता रहा, जबकि राजागण उस दुष्ट जरासन्ध द्वारा उत्पीड़ित किये जा रहे थे। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद राजाओं के विषय में उद्घरण देते हैं, “हे प्रभु! आप समस्त जगतों के मालिक हैं और आप अपने स्वांश बलराम के साथ अवतरित हुए हैं। यह कहा जाता है कि आपका यह अवतार श्रद्धालुओं की रक्षा करने और दुष्टों को विनष्ट करने के लिए हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में यह कैसे सम्भव है कि आपके होते हुए जरासन्ध जैसा दुष्ट हमें इस दयनीय स्थिति में ला दे? हम इस स्थिति से भौंचक्रे हैं और यह नहीं समझ पा रहे कि यह कैसे हो रहा है? हो सकता है कि हमारे विगत कर्मों के कारण कष्ट देने के लिए जरासन्ध को नियुक्त किया गया हो! किन्तु हमने शास्त्रों से यही सुना है कि जो कोई आपके चरणों की शरण ग्रहण करता है, वह तुरन्त ही पापपूर्ण जीवन के फलों के प्रति निश्चेष्ट हो जाता है—अतएव हम पूरी तरह से आपके शरणागत हैं और हमें आशा है कि आप हमें पूर्ण संरक्षण प्रदान करेंगे।”

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश
 शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ।
 हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं
 क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

स्वप्नायितम्—स्वप्न की तरह; नृप—राजाओं के; सुखम्—सुख को; पर-तन्त्रम्—बद्ध; ईश—हे प्रभु; शश्वत्—नित्य;
 भयेन—भय से; मृतकेन—इस शव से; धुरम्—बोझ को; वहामः—ढो रहे हैं; हित्वा—छोड़ कर; तत्—उस; आत्मनि—आत्मा
 के भीतर; सुखम्—सुख को; त्वत्—आपके लिए किया गया; अनीह—निःस्वार्थ कार्य से; लभ्यम्—प्राप्त होने वाले;
 क्लिश्यामहे—कष्ट भोगते हैं; अति—अत्यधिक; कृपणाः—अभागे; तव—आपकी; मायया—माया से; इह—इस संसार में।

हे प्रभु, इस शवतुल्य शरीर से, जो कि सदैव भय से ओतप्रोत रहता है, हम राजा लोग सुख के बोझ को स्वप्न की तरह वहन करते हैं। इस तरह हमने असली आत्म-सुख को त्याग दिया है, जो आपकी निस्वार्थ सेवा करने से प्राप्त होता है। इतने अधिक अभागे होने से हम आपकी माया के पाश के अन्तर्गत कष्ट भोग रहे हैं।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में अपना सन्देह व्यक्त करने के बाद यहाँ पर सारे राजा यह स्वीकार करते हैं कि वे अपनी मूर्खता के कारण ही कष्ट भोग रहे हैं, क्योंकि तथाकथित राजपद के क्षणिक तथा बद्धसुख के बदले में उन्होंने नित्य आत्म-सुख का परित्याग कर दिया है। अधिकांश लोग अपनी आत्मा के बदले सम्पत्ति, शक्ति, सम्मान, राजवंश इत्यादि की कामना करने के कारण ऐसी भूल करते हैं। सारे राजा यह स्वीकार करते हैं कि वे भगवान् की माया के पाश में फँस चुके हैं और उन्होंने राजनीतिक अगुआई की महान् चिन्ता को ही सुख मान लिया है।

तन्नो भवान्प्रणतशोकहराङ्घ्रियुगमो
 बद्धान्वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ।
 यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको
 बिभ्रद्गुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; नः—हमको; भवान्—आप; प्रणत—शरणागतों के; शोक—शोक; हर—हरने वाले; अङ्घ्रि—पाँवों की;
 युगमः—जोड़ी; बद्धान्—बद्ध; वियुङ्क्ष्व—कृपया छोड़ा दें; मगध-आह्वय—मगध नामक (जरासन्ध); कर्म—सकाम कर्म की;
 पाशात्—जंजीरों से; यः—जो; भू-भुजः—राजा का; अयुत—दस हजार; मतम्—उन्मत्त; गज—हाथियों के; वीर्यम्—पराक्रम;
 एकः—अकेले; बिभ्रत्—वश में करके; रुरोध—बन्दी बना लिया; भवने—अपने घर में; मृग-राट्—पशुओं का राजा, सिंह;
 इव—जिस तरह; अवीः—भेड़ों को।

इसलिए आप हम बन्दियों को कर्म के बन्धनों से, जो कि मगध के राजा के रूप में प्रकट

हुए हैं, मुक्त कीजिये, क्योंकि आपके चरण उन लोगों के शोक को हरने वाले हैं, जो उनकी शरण में जाते हैं। दस हजार उन्मत्त हाथियों के पराक्रम को वश में करके अकेले उसने हम सबों को अपने घर में उसी तरह बन्दी कर रखा है, जिस तरह कोई सिंह भेड़ों को पकड़ लेता है।

तात्पर्य : सारे राजा भगवान् से प्रार्थना कर रहे हैं कि वे उन्हें कर्म के बन्धन से मुक्त कर दें, जो कि भगवान् की भौतिक शक्ति से उत्पन्न है। वे यह स्पष्ट कर देते हैं कि जरासन्ध इतना प्रबल है कि उनके लिए अपनी शक्ति के बल पर उससे छूट पाने की कोई आशा नहीं है।

यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र
 भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ।
 जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो
 युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यः—जो; वै—निस्सन्देह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; द्वि—दो बार; नव—नौ; कृत्वः—गुणित; उदात्त—ऊपर उठा हुआ; चक्र—हे चक्रधारी; भग्नः—कुचला हुआ; मृधे—युद्ध में; खलु—निश्चय ही; भवन्तम्—आप; अनन्त—असीम; वीर्यम्—शक्ति; जित्वा—जीतकर; नृ-लोक—मानवीय मामलों में; निरतम्—लीन; सकृत्—केवल एक बार; ऊढ—बढ़ा हुआ; दर्पः—गर्व; युष्मत्—तुम्हारी; प्रजाः—जनता; रुजति—सताती है; नः—हमको; अजित—हे अजित; तत्—उसे; विधेहि—कृपा करके ठीक कर दें।

हे चक्रधारी, आपकी शक्ति अथाह है और इस तरह आपने जरासन्ध को युद्ध में सत्रह बार कुचला है। किन्तु मानवीय कामकाज में लीन होने से आपने उसे आप को पराजित करने का एक बार अवसर दिया है। अब वह गर्व से इस कदर फूला हुआ है कि आपकी जनता रूप हम सबों को, सताने का दुस्साहस कर रहा है। हे अजित, आप इस स्थिति को सुधारें।

तात्पर्य : नृलोकनिरतम् शब्द सूचित करता है कि भगवान् मानवी जगत के भीतर क्रीड़ा करने में लीन थे। इस तरह मानवीय राजा की भाँति अभिनय करते हुए उन्होंने जरासन्ध को सत्रह बार पराजित करने के बाद एक युद्ध में उसे विजयी होने दिया। यहाँ पर राजा यह कहना चाहते हैं कि जरासन्ध उन्हें इसलिए सता रहा है, क्योंकि वे लोग कृष्ण के शरणागत हैं। इसलिए वे भगवान् से याचना करते हैं, “हे चक्र-शस्त्र को ऊँचा रखने वाले! आप समुचित प्रबन्ध करें।”

श्रील प्रभुपाद ने राजाओं की भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया है, “हे प्रभु! आप अब तक क्रमशः अठारह बार जरासन्ध से युद्ध कर चुके हैं, जिसमें से उसकी असाधारण शक्तिशाली स्थिति पर

विजयी होकर आपने उसे सत्रह बार हराया है। परन्तु अठारहवें युद्ध में आपने अपना मानवीय आचरण प्रदर्शित किया, जिससे ऐसा लगा कि आप पराजित हो गये। प्रिय प्रभु! हम यह भलीभाँति जानते हैं कि जरासन्ध आपको कभी भी नहीं हरा सकता, क्योंकि आपकी शक्ति, क्षमता, साधन और अधिकार सभी अनन्त हैं। न तो कोई आपकी समता कर सकता है, न आपसे बढ़कर हो सकता है। अठारहवें युद्ध में जरासन्ध के द्वारा आपकी हार की प्रतीति मानव आचरण का एक प्रदर्शन मात्र है। दुर्भाग्यवश, मूर्ख जरासन्ध आपकी चातुरी को नहीं समझ पाया और तब से वह अपनी भौतिक शक्ति तथा प्रतिष्ठा के गर्व से फूला हुआ है। विशेष रूप से उसने हमें बन्दी बना लिया है, यह भलीभाँति जानते हुए कि आपके भक्त होने से हम आपकी सत्ता के अधीन हैं।”

दूत उवाच

इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकङ्क्षिणः ।

प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

दूतः उवाच—सन्देशवाहक ने कहा; इति—इस प्रकार; मागध—जरासन्ध द्वारा; संरुद्धाः—बन्दी बनाये गये; भवत्—आपके; दर्शन—दर्शन के लिए; काङ्क्षिणः—उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हुए; प्रपन्नाः—शरणागत; पाद—चरणों के; मूलम्—तले; ते—तुम्हारे; दीनानाम्—दीनों के; शम्—लाभ; विधीयताम्—कृपया प्रदान करें।

दूत ने आगे कहा : यह जरासन्ध के द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं का सन्देश है। वे सभी आपके दर्शनों के लिए लालायित हैं, क्योंकि उन्होंने अपने को आपके चरणों में समर्पित कर दिया है। कृपा करके इन बेचारों को सौभाग्य प्रदान करें।

श्रीशुक उवाच

राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ।

बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; राज—राजाओं के; दूते—दूत के; ब्रुवति—बोल चुकने पर; एवम्—इस प्रकार; देव—देवताओं के; ऋषिः—ऋषि (नारदमुनि); परम—परम; द्युतिः—तेज; बिभ्रत्—धारण किये; पिङ्ग—पीला सा; जटा—बालों के समूह के; भारम्—भार; प्रादुरासीत्—प्रकट हुए; यथा—जिस तरह; रविः—सूर्य।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब राजाओं का दूत इस तरह बोल चुका, तो देवर्षि नारद सहसा प्रकट हुए। सिर पर सुनहरे रंग की जटा धारण किये परम तेजस्वी ऋषि प्रकाशमान सूर्य की तरह लग रहे थे।

तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ।

ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; दृष्ट्वा—देखकर; भगवन्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण ने; सर्व—समस्त; लोक—लोकों के; ईश्वर—नियन्ताओं के भी; ईश्वरः—नियन्ता; ववन्द—नमस्कार किया; उत्थितः—उठकर; शीर्ष्णा—अपने सिर के बल; स—सहित; सभ्यः—सभा के सदस्यों; स—सहित; अनुगः—अनुयायियों; मुदा—हर्ष के साथ ।

भगवान् कृष्ण जो ब्रह्मा तथा शिव जैसे लोकेश्वरों के भी पूज्य स्वामी हैं फिर भी ज्योंही उन्होंने नारदमुनि को आते देखा, तो वे अपने मंत्रियों तथा सचिवों समेत महर्षि का स्वागत करने तथा अपना सिर झुकाकर उन्हें सादर नमस्कार करने के लिए सहर्ष खड़े हो गये ।

तात्पर्य : यह भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत श्रीकृष्ण पर आधारित है । मुदा शब्द यह सूचित करता है कि नारद को आया देखकर भगवान् कृष्ण मुदित थे ।

सभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम् ।

बभाषे सुनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

सभाजयित्वा—पूजा करके; विधि-वत्—शास्त्रों के आदेशानुसार; कृत—जिसने किया था उसको (नारद को); आसन—आसन का; परिग्रहम्—स्वीकार किया जाना; बभाषे—(श्रीकृष्ण) बोले; सु-नृतैः—सत्य तथा मधुर; वाक्यैः—शब्दों से; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; तर्पयन्—तुष्ट करते हुए; मुनिम्—मुनि को ।

जब नारद, उन्हें निवेदित किया गया आसन ग्रहण कर चुके, तो भगवान् ने शास्त्रीय विधियों से मुनि का स्वागत किया और सम्मानपूर्वक तुष्ट करते हुए उनसे निम्नलिखित सत्यनिष्ठ तथा मधुर शब्द कहे ।

अपि स्वदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् ।

ननु भूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

अपि स्वत्—निश्चय ही; अद्य—आज; लोकानाम्—लोकों के; त्रयाणाम्—तीनों; अकुतः—भय से पूर्ण मुक्ति; ननु—निस्सन्देह; भूयान्—महान्; भगवतः—शक्तिशाली पुरुष का; लोकान्—समस्त लोकों में; पर्यटतः—विचरण करने वाले; गुणः—गुण ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : यह निश्चित है कि आज तीनों लोकों ने समस्त भय से मुक्ति प्राप्त कर ली है, क्योंकि यह आप जैसे सारे लोकों में स्वच्छन्द विचरण करने वाले महापुरुष का प्रताप है ।

न हि तेऽविदितं किञ्चिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ।

अथ पृच्छामहे युष्मान्याण्डवानां चिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; ते—तुमको; अविदितम्—अज्ञात; किञ्चित्—कुछ भी; लोकेषु—लोकों में; ईश्वर—परमेश्वर; कर्तृषु—बनाने वाले; अथ—इस तरह; पृच्छामहे—हम जिज्ञासा करें; युष्मान्—आपसे; पाण्डवानाम्—पाण्डु-पुत्रों के; चिकीर्षितम्—मनोभावों के विषय में।

ईश्वर की सृष्टि के भीतर ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो आपको ज्ञात न हो। अतएव कृपा करके हमें बतलायें कि पाण्डव क्या करना चाहते हैं ?

श्रीनारद उवाच

दृष्टा माया ते बहुशो दुरत्यया

माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः ।

भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभि-

र्वह्नेरिव च्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—श्री नारद ने कहा; दृष्टा—देखी गयी; माया—मेरे द्वारा; ते—तुम्हारी; बहुशः—अनेक बार; दुरत्यया—दुर्लभ्य; माया—मोहिनी शक्ति; विभो—हे सर्वशक्तिमान; विश्व—ब्रह्माण्ड के; सृजः—स्रष्टा (ब्रह्मा) का; च—तथा; मायिनः—मोहने वाले (आप) का; भूतेषु—जीवों में; भूमन्—हे सर्वव्यापक; चरतः—विचरण करने वाले (आपका); स्व—अपनी; शक्तिभिः—शक्तियों से; बह्नेः—अग्नि की; इव—तरह; च्छन्न—ढका हुआ; रुचः—प्रकाश; न—नहीं; मे—मेरे लिए; अद्भुतम्—अद्भुत।

श्री नारद ने कहा : हे सर्वशक्तिमान, मैं आपकी माया की दुर्लभ्य शक्ति को, जिससे ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्मा तक को आप मोहित कर लेते हैं, कई बार देख चुका हूँ। हे भूमन्, इसमें मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं लगता कि आप जीवों के बीच विचरण करते हुए अपने को अपनी ही शक्तियों से छिपा लेते हैं, जिस तरह अग्नि अपने ही प्रकाश को धुँ से ढक लेती है।

तात्पर्य : जब भगवान् ने नारदमुनि से पाण्डवों के मनोभावों के विषय में पूछा, तो मुनि ने उत्तर दिया कि भगवान् स्वयं ही सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ हैं, यहाँ तक कि वे ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्मा को भी मोह सकते हैं। नारद जान गये थे कि भगवान् कृष्ण जरासन्ध का वध करना चाहते हैं और नारद से पाण्डवों के मनोभावों के विषय में पूछ कर इस लीला की तैयारी प्रारम्भ कर रहे हैं। भगवान् के इस मनोभाव को जान कर नारद को तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ, जब भगवान् कृष्ण ने उनसे समाचार जानना चाहा।

तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं
स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः ।
यद्विद्यमानात्मतयावभासते
तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारा; ईहितम्—उद्देश्य; कः—कौन; अर्हति—समर्थ है; साधु—उचित रीति से; वेदितुम्—समझ पाने के लिए; स्व—अपनी; मायया—भौतिक शक्ति से; इदम्—इस (ब्रह्माण्ड) को; सृजतः—बनाता है; नियच्छतः—तथा विलीन कर देता है; यत्—जो; विद्यमान—उपस्थित होना; आत्मतया—आप परमात्मा के सम्बन्ध द्वारा; अवभासते—प्रतीत होता है; तस्मै—उसे; नमः—नमस्कार; ते—तुमको; स्व—अपनी ही प्रकृति द्वारा; विलक्षण-आत्मने—अचिन्त्य ।

भला आपके उद्देश्य को सही सही कौन समझ सकता है? अपनी भौतिक शक्ति से आप इस सृष्टि का विस्तार करते हैं और फिर इसे अपने में लीन कर लेते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि इसका वास्तविक अस्तित्व है। आपको नमस्कार है, जिनकी दिव्य स्थिति अचिन्त्य है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने नारद की अनुभूति का वर्णन इस प्रकार किया है—“प्रिय प्रभु! आप अपनी अचिन्त्य शक्तियों द्वारा इस विराट जगत की सृष्टि करते हैं, इसका पालन करते हैं और फिर इसका संहार कर देते हैं। ऐसा आपकी अचिन्त्य शक्ति के बल पर ही होता है कि यद्यपि यह भौतिक जगत वैकुण्ठ-लोक का छाया-निरूपण ही है, तथापि यह वास्तविक प्रतीत होता है। कोई समझ नहीं पाता कि आप भविष्य में क्या करने वाले हैं। आपकी दिव्य स्थिति सबके लिए सदैव अचिन्त्य है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं आपको बारम्बार नमस्कार ही कर सकता हूँ।”

स्वविलक्षणात्मने शब्द यह भी सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण का अपना अद्वितीय स्वभाव तथा गुण है। कोई न तो ईश्वर के तुल्य है, न उनसे बढ़कर है।

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं
न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ।
लीलावतारैः स्वयशः प्रदीपकं
प्राञ्चालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

जीवस्य—बद्धजीव के लिए; यः—जो (भगवान्); संसरतः—जन्म-मृत्यु के चक्र में जकड़ा (बद्धजीव); विमोक्षणम्—मुक्ति; न जानतः—न जानते हुए; अनर्थ—अवांछित वस्तुएँ; वहात्—जो लाता है; शरीरतः—भौतिक शरीर से; लीला—लीलाओं के लिए; अवतारैः—इस जगत में अवतार लेकर; स्व—अपना; यशः—यश; प्रदीपकम्—दीपक; प्राञ्चालयत्—जलवाया; त्वा—तुम; तम्—उस भगवान् की; अहम्—मैं; प्रपद्ये—शरण में जाता हूँ।

जन्म तथा मृत्यु के चक्र में फँसा जीव यह नहीं जानता कि भौतिक शरीर से, जिससे उसे

इतना कष्ट मिलता है, किस प्रकार छुटकारा पाया जाये। किन्तु हे परमेश्वर, आप विविध स्वरूपों में इस जगत में अवतरित होते हैं और अपनी लीलाएँ करके अपने यश की प्रज्वलित मशाल से जीव के मार्ग को आलोकित कर देते हैं। इसलिए मैं आपकी शरण में जाता हूँ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, “ [नारद ने कहा] ज्ञान की शारीरिक धारणा में प्रत्येक व्यक्ति भौतिक इच्छाओं से प्रेरित होता है, अतएव प्रत्येक व्यक्ति जन्म और मृत्यु के चक्र में एक के बाद एक नवीन भौतिक शरीर धारण करता रहता है। जगत की ऐसी धारणा में लीन रहने से वह यह नहीं जान पाता कि भौतिक शरीर के इस बन्धन से किस प्रकार छूटा जाय। हे भगवन्! अपनी अहैतुकी कृपा से आप अपनी विभिन्न दिव्य लीलाएँ दिखलाने के लिए अवतरित होते हैं, जो प्रदीप्त एवं यश से पूर्ण हैं। अतएव आपकी वन्दना करने के सिवाय मेरे पास अन्य कोई विकल्प नहीं है। हे प्रभु! आप परम पुरुष हैं, परब्रह्म हैं और सामान्य पुरुष के रूप में आपकी लीलाएँ अन्य युक्तिपूर्ण साधन हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि मंच पर हो रहे नाटक में नट अपनी निजी पहचान से भिन्न अभिनय करता है।”

अथाप्याश्रावये ब्रह्म नरलोकविडम्बनम् ।

राज्ञः पैतृष्वस्त्रेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अथ अपि—फिर भी; आश्रावये—मैं बतलाऊँगा; ब्रह्म—हे परम सत्य; नर-लोक—मानव समाज के; विडम्बनम्—(आपसे) जो अनुकरण करते हैं; राज्ञः—राजा (युधिष्ठिर) का; पैतृ—आपके पिता की; स्वस्त्रेयस्य—बहन के पुत्र के; भक्तस्य—आपके भक्त; च—तथा; चिकीर्षितम्—मनोभाव।

तो भी, मनुष्य का अभिनय कर रहे हे परम सत्य, मैं आपको बतलाऊँगा कि आपके बुआ के पुत्र युधिष्ठिर महाराज क्या करना चाहते हैं।

यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः ।

पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

यक्ष्यति—यज्ञ करेगा; त्वाम्—तुमको; मख—यज्ञ का; इन्द्रेण—सबसे बड़े; राजसूयेन—राजसूय के द्वारा; पाण्डवः—पाण्डु के पुत्र; पारमेष्ठ्य—एकछत्र सत्ता; कामः—इच्छा करते हुए; नृ-पतिः—राजा; तत्—उस; भवान्—आप; अनुमोदताम्—कृपया अनुमोदन कीजिये।

राजा युधिष्ठिर एकछत्र सत्ता की इच्छा से राजसूय नामक महानतम यज्ञ द्वारा आपकी पूजा करना चाहते हैं। कृपा करके उनके इस प्रयास के लिए आशीर्वाद प्रदान करें।

तात्पर्य : यहाँ पर राजा युधिष्ठिर को *पारमेष्ठ्यकाम* अर्थात् “पारमेष्ठ्य की इच्छा करने वाला” कहा गया है। *पारमेष्ठ्य* शब्द का अर्थ है “एकछत्र सत्ता” और “भगवान् जो संसार-भर में सबसे ऊँचे हैं” का भी सूचक है। इसलिए श्रील प्रभुपाद नारद के संदेश का इस प्रकार भावार्थ देते हैं—

आपने फुफेरे भाई पाण्डवों का शुभचिन्तक बनकर उनके विषय में जिज्ञासा की है, अतएव मैं उनके मनोभावों के विषय में आपको बतला रहा हूँ। अब कृपा करके मुझसे सुनिये। सर्वप्रथम, आपको बतला दूँ कि राजा युधिष्ठिर के पास वह सारा भौतिक ऐश्वर्य है, जो सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक में पाया जा सकता है। उनके पास किसी भी भौतिक ऐश्वर्य की कमी नहीं है, जिसकी वह इच्छा करे, फिर भी वे आपकी संगति प्राप्त करने और आपको प्रसन्न करने के लिए राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। वे आपकी अहैतुकी कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से आपकी पूजा भी करना चाहते हैं और मेरा निवेदन है कि आप उनकी इस इच्छा को पूरा करें।”

चूँकि *पारमेष्ठ्य* शब्द ब्रह्मा के पद का भी सूचक हो सकता है, इसलिए श्रील प्रभुपाद ने *पारमेष्ठ्यकाम* शब्द का अर्थ न केवल यह सूचित करने के लिए किया कि राजा युधिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण की संगति तथा कृपा पाने की इच्छा की, अपितु यह भी कि राजा युधिष्ठिर के पास ब्रह्मा का सारा ऐश्वर्य अर्थात् *पारमेष्ठ्य* था।

तस्मिन्देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुरादयः ।

दिदक्षवः समेष्यन्ति राजानश्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उसमें; देव—हे प्रभु; क्रतु—यज्ञों के; वरे—श्रेष्ठ; भवन्तम्—आप; वै—निस्सन्देह; सुर—देवता; आदयः—तथा अन्य महापुरुष; दिदक्षवः—देखने के इच्छुक; समेष्यन्ति—सभी आयेंगे; राजानः—सारे राजा; च—भी; यशस्विनः—यशस्वी।

हे प्रभु, आपको देखने के इच्छुक सारे श्रेष्ठ देवता तथा यशस्वी राजा उस श्रेष्ठ यज्ञ में आयेंगे।

तात्पर्य : आचार्यों की व्याख्या है कि नारद यह कहना चाहते हैं कि चूँकि भगवान् कृष्ण का दर्शन करने सारे महापुरुष आयेंगे, इसलिए उन्हें भी चाहिए कि इस यज्ञ में आयें।

श्रवणात्कीर्तनाद्भ्यानात्पूयन्तेऽन्तेवसायिनः ।

तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिर्मर्शिनः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

श्रवणात्—सुनने से; कीर्तनात्—कीर्तन करने से; ध्यानात्—तथा ध्यान करने से; पूयन्ते—पवित्र हो जाते हैं; अन्ते-वसायिनः—जाति से निकाले अन्त्यज; तव—आपके विषय में; ब्रह्म-मयस्य—परम सत्य की पूर्ण अभिव्यक्ति; ईश—हे प्रभु; किम् उत—तो फिर क्या कहा जाय; ईक्षा—देखने वाले; अभिमर्शिनः—तथा स्पर्श करने वाले।

हे प्रभु, आपके यश का श्रवण तथा कीर्तन करने से तथा ब्रह्मरूप आपका ध्यान करने से जाति से निकाले गये (अन्त्यज) लोग भी शुद्ध हो जाते हैं। तो फिर उनके विषय में क्या कहा जाय जो आपको देखते हैं और आपका स्पर्श करते हैं?

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने ब्रह्ममयस्य की व्याख्या ब्रह्मघनमूर्तेः अथवा परम सत्य के सान्द्रित रूप में की है।

यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां
भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिग्वितानम् ।
मन्दाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो
गङ्गेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; अमलम्—विशुद्ध; दिवि—स्वर्ग में; यशः—यश; प्रथितम्—विस्तीर्ण; रसायाम्—रसातल में; भूमौ—पृथ्वी पर; च—तथा; ते—तुम्हारा; भुवन—सारे लोकों के लिए; मङ्गल—हे सौभाग्यदाता; दिक्—दिशाओं में; वितानम्—चँदोवा, प्रसार; मन्दाकिनी इति—मन्दाकिनी नाम से; दिवि—स्वर्ग में; भोगवती इति—भोगवती नामक; च—तथा; अधः—नीचे; गङ्गा इति—गंगा नाम से; च—तथा; इह—यहाँ, पृथ्वी पर; चरण—आपके चरणों से; अम्बु—जल; पुनाति—पवित्र करती है; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड को।

हे प्रभु, आप सभी मंगलों के प्रतीक हैं। आपका दिव्य नाम तथा यश ब्रह्माण्ड के उच्चतर, मध्य तथा अधो लोक सहित समस्त लोकों के ऊपर छत्र के समान फैला हुआ है। आपके चरणकमलों को प्रक्षालित करने वाला दिव्य जल उच्चतर लोकों में मन्दाकिनी नदी के नाम से, अधो लोक में भोगवती के नाम से और इस पृथ्वी लोक में गंगा के नाम से विख्यात है। यह पवित्र दिव्य जल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्रवाहित होता है और जहाँ भी जाता है, उसे पवित्र कर देता है।

तात्पर्य : यह भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत श्रीकृष्ण पर आधारित है। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि दिग्वितानम् शब्द सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण की दिव्य कीर्ति ब्रह्माण्ड-भर में उसी तरह फैली है, जिस तरह सारी दिशाओं के ऊपर शीतल करने वाला कोई चँदोवा हो। दूसरे शब्दों में, भगवान् के

चरणकमलों की शीतल छाया में सारे जगत को शरण मिल सकती है। इस प्रकार भगवान् भुवन-मंगल हैं, अर्थात् इस जगत में प्रत्येक शुभ वस्तु के प्रतीक हैं।

श्रीशुक उवाच

तत्र तेष्व्वात्मपक्षेष्वगृणत्सु विजिगीषया ।

वाचः पेशैः स्मयन्भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तत्र—वहाँ; तेषु—उन (यादवों); आत्म—अपना; पक्षेषु—पक्षधरों में; अगृणत्सु—न मानने वाले; विजिगीषया—जीतने की इच्छा से (जरासन्ध); वाचः—वाणी के; पेशैः—मथुर प्रयोग से; स्मयन्—हँसते हुए; भृत्यम्—दास; उद्धवम्—श्री उद्धव से; प्राह—कहा; केशवः—कृष्ण ने।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब जरासन्ध को हराने की इच्छा से भगवान् के पक्षधर यादवों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, तो भगवान् केशव अपने अनुचर उद्धव की ओर मुड़े और हँसते हुए उत्तम शब्दों में उनसे बोले।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की व्याख्या है, “द्वारका के सुधर्मा सभाभवन में महर्षि नारद के आगमन के पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके मंत्री तथा सचिव इस विषय पर चर्चा कर रहे थे कि किस प्रकार जरासन्ध के राज्य पर आक्रमण किया जाय। चूँकि वे इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहे थे इसलिए नारदजी का यह प्रस्ताव कि भगवान् कृष्ण हस्तिनापुर जाकर महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित हों, उन्हें अधिक आकर्षक नहीं लगा। भगवान् कृष्ण अपने साथियों के अभिप्राय को समझ गये थे, क्योंकि वे ब्रह्माजी के भी शासक हैं। इसलिए उन्हें सान्त्वना देने के लिए उन्होंने उद्धव से मुसकरा कर कहा।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि भगवान् इसलिए मुसकाये क्योंकि वे यह दिखाने जा रहे थे कि कठिन परिस्थितियों में भी सलाह देने की क्षमता उद्धव में है।

श्रीभगवानुवाच

त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् ।

अथात्र ब्रूहानुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; त्वम्—तुम; हि—निस्सन्देह; नः—हमारे; परमम्—परम; चक्षुः—आँख; सुहृत्—शुभचिन्तक मित्र; मन्त्र—सलाह का; अर्थ—मूल्य; तत्त्व-वित्—ठीक से जानने वाले; अथ—इस प्रकार; अत्र—इस सम्बन्ध में; ब्रूहि—कहें; अनुष्ठेयम्—करणीय; श्रद्दध्मः—हमें विश्वास है; करवाम—करेंगे; तत्—वही।

भगवान् ने कहा : निस्सन्देह तुम हमारे उत्तम नेत्र तथा घनिष्ठ मित्र हो, क्योंकि विविध प्रकार की सलाहों के आपेक्षिक मूल्य को पूर्णतः जानते हो। इसलिए तुम हमसे कहो कि इस स्थिति में हमें क्या करना चाहिए। हमें तुम्हारे निर्णय पर विश्वास है और तुम जैसा कहोगे हम वैसा ही करेंगे।

इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ।
निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उपामन्त्रितः—अनुरोध किये जाने पर; भर्त्रा—अपने स्वामी द्वारा; सर्व-ज्ञेन—सर्वज्ञ; अपि—यद्यपि; मुग्ध—मोहग्रस्त; वत्—मानो; निदेशम्—आज्ञा को; शिरस—सिर पर; आधाय—धारण करके; उद्धवः—उद्धव ने; प्रत्यभाषत—उत्तर दिया।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : इस तरह अपने स्वामी द्वारा अनुरोध किये जाने पर, जो कि सर्वज्ञ होते हुए भी मोहित होने का अभिनय कर रहे थे, उद्धव ने उनके इस आदेश को शिरोधार्य किया और इस प्रकार उत्तर दिया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “भगवान् कृष्ण की दैनिक चर्या” नामक सत्रवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।